NEERAJ®

Serving Education for Last 40 Years

M.H.D. - 18

दलित साहित्य की अवधारणा और स्वरूप

Chapter Wise Reference Book
Including Many Solved Sample Papers

Based on

I.G.N.O.U.

& Various Central, State & Other Open Universities

By: VED PRAKASH SHARMA

NEERAJ PUBLICATIONS
(Publishers of Educational Books)

Mob.: 8510009872, 8510009878 E-mail: info@neerajbooks.com
Website: www.neerajbooks.com

MRP ₹ 280/-

Content

दलित साहित्य की अवधारणा और स्वरूप

Question Paper—June-2023 (Solved) 1
Question Paper—December-2022 (Solved) 1
Question Paper—Exam Held in March-2022 (Solved) 1-2
Question Paper—Exam Held in August-2021 (Solved) 1
Question Paper—Exam Held in February-2021 (Solved) 1
Question Paper—December, 2019 (Solved) 1-2
Question Paper—June, 2019 (Solved) 1-3
Question Paper—December, 2018 (Solved) 1-4
Question Paper—June, 2018 (Solved) 1-2
Question Paper—December, 2017 (Solved) 1-2
Question Paper—June, 2017 (Solved) 1-2

S.No.	Chapterwise Reference Book	Page

दलित साहित्य का उद्‍भव और विकास

1. दलित साहित्य की अवधारणा और स्वरूप 1
2. दलित साहित्य चिंतन का वैचारिक आधार 11
3. दलित साहित्य परंपरा (प्रेमचंद, निराला और नागार्जुन के विशेष संदर्भ में) 23

सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन और दलित साहित्य

4. महात्मा ज्योतिबा फुले और सत्यशोधक समाज-आंदोलन 32

S.No.	Chapterwise Reference Book	Page

5. डॉ. अंबेडकर और दलित मुक्ति आंदोलन 40

6. अछूतानन्द और हीरा डोम : सामाजिक आंदोलन और साहित्यिक अवदान 51

दलित साहित्य और चिंतनधारा

7. महात्मा ज्योतिबा फुले का चिंतन 62

8. डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर का चिन्तन 72

9. पेरियार ई.वी. रामास्वामी नायकर : चिन्तन और विचार 85

10. श्री नारायण गुरु : चिन्तन और विचार 96

दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र

11. दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्रीय प्रतिमान 106

12. दलित साहित्य की अभिव्यक्ति और भाषा 115

13. दलित साहित्य : आलोचना 123

■ ■

Sample Preview of the Solved Sample Question Papers

Published by:

NEERAJ PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

QUESTION PAPER

June – 2023

(Solved)

दलित साहित्य की अवधारणा और स्वरूप

M.H.D.-18

समय : 2 घण्टे] *[अधिकतम अंक : 50*

***नोट :** किन्हीं पांच प्रश्नों के उत्तर दीजिए। सभी प्रश्नों के अंक समान हैं।*

प्रश्न 1. 'दलित' शब्द की अर्थवत्ता स्पष्ट करते हुए उसके अस्मितागत स्वरूप को व्याख्यायित कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-1, पृष्ठ-6, प्रश्न-1

प्रश्न 2. दलित साहित्य आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-1, पृष्ठ-7, प्रश्न-3

प्रश्न 3. भारतीय जाति-व्यवस्था के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ. आंबेडकर के विचारों का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-2, पृष्ठ-21, प्रश्न-7

प्रश्न 4. दलित विमर्श की वैचारिकी और प्रेमचंद की दलित संवेदना के अंत:संबंध को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-3, पृष्ठ-28, प्रश्न-1

प्रश्न 5. अछूतानंद के सामाजिक सुधार आन्दोलन पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-6, पृष्ठ-57, प्रश्न-1

प्रश्न 6. महात्मा ज्योतिबा फूले के नारी संबंधी चिन्तन की विवेचना कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-4, पृष्ठ-38, प्रश्न-4

प्रश्न 7. स्त्री मुक्ति के बारे में पेरियार के विचारों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-9, पृष्ठ-91, प्रश्न-3

प्रश्न 8. दलित आन्दोलन में दलित साहित्य की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-11, पृष्ठ-111, प्रश्न-6

प्रश्न 9. दलित साहित्य की भाषा की क्या विशिष्टता है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-12, पृष्ठ-121, प्रश्न-5

प्रश्न 10. निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर टिप्पणियां लिखिए–

(क) सत्यशोधक समाज

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-2, पृष्ठ-19, प्रश्न-4

(ख) दलित चेतना

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-1, पृष्ठ-3, 'दलित चेतना आंदोलन'

(ग) 'अछूत की शिकायत'

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-6, पृष्ठ-59, प्रश्न-4

(घ) वैकम सत्याग्रह

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-10, पृष्ठ-99, 'वैकम सत्याग्रह'

■■

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

QUESTION PAPER

December – 2022

(Solved)

दलित साहित्य की अवधारणा और स्वरूप **M.H.D.-18**

समय : 2 घण्टे] *[अधिकतम अंक : 50*

नोट : *किन्हीं पांच प्रश्नों के उत्तर दीजिए। सभी प्रश्नों के अंक समान हैं।*

प्रश्न 1. 'दलित चेतना' का आशय स्पष्ट करते हुए दलित साहित्य की अवधारणा पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-1, पृष्ठ-7, प्रश्न-2, पृष्ठ-8, प्रश्न-4

प्रश्न 2. ज्योतिबा फूले के सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलनों के महत्त्व की विवेचना कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-2, पृष्ठ-18, प्रश्न-3

प्रश्न 3. दलित साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों की सोदाहरण समीक्षा कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-1, पृष्ठ-9, प्रश्न-85, पृष्ठ-10, प्रश्न 6

प्रश्न 4. ''डॉ. अम्बेडकर का जाति-उन्मूलन सिद्धांत वैज्ञानिक और जनतांत्रिक परम्परा को विकसित करता है।'' विवेचना कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-2, पृष्ठ-21, प्रश्न-7

प्रश्न 5. निराला के साहित्य में अभिव्यक्त दलित संवेदना का सोदाहरण विश्लेषण कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-3, पृष्ठ-25, 'निराला का साहित्य : दलित जीवन की मार्मिक पहचान'

प्रश्न 6. दलित साहित्य में मिथकों के अभिप्राय की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-12, पृष्ठ-121, प्रश्न-6

प्रश्न 7. दलित साहित्य लेखन के योगदान की समीक्षा कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-13, पृष्ठ-123, 'साहित्य की परंपरा में हस्तक्षेप'

प्रश्न 8. नारायण गुरु के चिंतन में स्त्री मुक्ति चेतना की विवेचना कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-10, पृष्ठ-101, प्रश्न-2

प्रश्न 9. डॉ. अम्बेडकर के धर्म संबंधी चिंतन की विवेचना कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-8, पृष्ठ-74, 'डॉ. अंबेडकर का नारी संबंधी चिंतन'

प्रश्न 10. निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर टिप्पणियां लिखिए–

(क) 'अछूत की शिकायत' कविता का मूल्यांकन

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-6, पृष्ठ-59, प्रश्न-4

(ख) पेरियार के धार्मिक विचार

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-9, पृष्ठ-90, प्रश्न-2

(ग) स्वामी अछूतानंद के सामाजिक सुधार आन्दोलन

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-6, पृष्ठ-57, प्रश्न-1

(घ) दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-11, पृष्ठ-111, प्रश्न-4, प्रश्न-5

■■

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

Sample Preview
of
The Chapter

Published by:

NEERAJ
PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

दलित साहित्य की अवधारणा और स्वरूप

दलित साहित्य का उद्भव और विकास

दलित साहित्य की अवधारणा और स्वरूप 1

परिचय

भारतीय समाज में व्याप्त शोषण, दमन, उत्पीड़न, जातिभेद, वर्ण-व्यवस्था और अस्पृश्यता के विरुद्ध संघर्ष की दीर्घकालीन ऐतिहासिक प्रक्रिया रही है। गौतम बुद्ध के समय से लेकर आज तक वर्चस्व और अन्याय के खिलाफ सामाजिक बदलाव लाने के लिए सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक आंदोलन चलते रहे हैं। आज दलित साहित्य भी सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया को गति देने के लिए एक सशक्त आंदोलन है।

आज भी भारतीय समाज हजारों जातियों में विभाजित है। इस वैज्ञानिक युग में भी जातिगत भेदभाव अपनी जड़ें जमाए हुए है। इस जड़ को उखाड़ फेंकने के लिए दलित साहित्य कृतसंकल्प है। दलित साहित्य के प्रसिद्ध साहित्यकार ओम प्रकाश बाल्मीकि के शब्दों में, "भारतीय समाज का वर्ण-व्यवस्था के आधार पर जो विभाजन हुआ है, जातिभेद उसी की ही देन है, जो असमानता, शोषण और वर्चस्व पर आधारित है। वर्ण-व्यवस्था के पक्षधर इस यह स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं कि विकास को रोक देने वाली यह व्यवस्था उन्नति के मार्ग को सीमित कर देती है और समाज को संकीर्णता की बेड़ियों में बांध देती है।"

भारतीय समाज की भेदभावपूर्ण व्यवस्था ने धर्म और मर्यादा का आवरण ओढ़कर ब्राह्मणवाद का रूप ले लिया, जिसने अंधविश्वास, धार्मिक कर्मकाण्ड और ऊंच-नीच की भावना को उचित ठहराया। वर्तमान में समस्त संवैधानिक कानूनों के उपरांत भी ये मानवीय कुरीतियां हमारे समाज में बहुत बुरी तरह से जड़ें जमाए हुए हैं।

ईसा पूर्व 563-483 ई.पू. में बुद्ध द्वारा शुरू किया गया विषमता के खिलाफ संघर्ष संपूर्ण बौद्धकाल में विद्यमान रहा। साहित्य में सिद्धों, नाथों और संतों ने अपनी-अपनी रीतियों के द्वारा इस संघर्ष और आंदोलन को उद्दीप्त रखा। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ज्योतिबा फुले और 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बाबासाहब डॉ. अंबेडकर द्वारा छेड़ा गया सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आंदोलन दलित साहित्य का प्रेरणास्रोत बन गया।

ज्योतिबा फुले और डॉ. अंबेडकर के आंदोलन का केन्द्र महाराष्ट्र रहा, इसलिए दलित साहित्य का उद्घोष सर्वप्रथम प्रखर रूप से मराठी में ही सुनाई पड़ा। दलित अस्मिता के संघर्ष ने सचेतन रूप में महाराष्ट्र से आरंभ होकर अखिल भारतीय रूप धारण कर लिया है। सामाजिक विषमता के खिलाफ संघर्ष करने के लिए ज्योतिबा फुले ने सत्यशोधक आंदोलन का नेतृत्व किया। उन्होंने जातिगत भेदभाव का विरोध करते हुए मानव की समानता का प्रचार किया। ज्योतिबा फुले के सत्यशोधक आंदोलन के प्रमुख उद्देश्य थे–सामाजिक विषमता को समाप्त करना, भगवान और भक्त के मध्य के दलालों को समाप्त करना, सभी के लिए शिक्षा के द्वार खोलना। उनके आंदोलन के यही विचार डॉ. अंबेडकर के प्रेरणास्रोत बने। डॉ. अंबेडकर ने 1927 से 1930 तक एक सुनियोजित

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

आंदोलन चलाया। डॉ. अंबेडकर ने बुद्ध धर्म अपनाकर उसके प्रमुख तत्त्वों–समता, स्वतंत्रता और भाईचारे को संघर्ष का प्रमुख मुद्दा बनाकर दलित मुक्ति आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए भरसक प्रयास किया। डॉ. अंबेडकर ने दलित मुक्ति आंदोलन द्वारा दलितों को उनके अधिकार दिलाने के लिए जिस संघर्ष को शुरू किया था, उसे पूर्ण करने के लिए दलित साहित्य का आंदोलन सक्रिय है।

दलित साहित्य की अवधारणा डॉ. अंबेडकर और ज्योतिबा फुले के विचार, चिंतन तथा अन्य परिवर्तनकारी संकेतों एवं संघर्षों से जुड़कर विकसित हुई है, जिसका उद्देश्य ईश्वर के अस्तित्व को नकारकर वर्ण-व्यवस्था को समाप्त करके मानवमात्र की समानता स्थापित करना है।

अध्याय का विहंगावलोकन

दलित की परिभाषा

जिसे शताब्दियों से साहित्य और समाज में एक तरफ कर दिया गया हो, जिसे शूद्र, अतिशूद्र, अवर्ण, पंचम, हरिजन, अंत्यज, चाण्डाल आदि नामों से संबोधित करके घृणा, निरीह और दया का पात्र बना दिया हो, वही आज साहित्य, समाज और राजनीति तीनों स्तरों पर दलित के रूप में अपनी अस्मिता का परिचय दे रहा है। प्रसिद्ध मराठी दलित साहित्यकार शरण कुमार लिंबाले के अनुसार, 'दलित को दया से नफरत है। उसे दया और सहानुभूति नहीं, अधिकार चाहिए। आज इसका स्वर मराठी से प्रारंभ होकर हिन्दी और अन्य भारतीय भाषा-साहित्यों में नकार, वेदना व आक्रोश के साथ दलित साहित्य के रूप में सुना जा सकता है।"

दमित हुआ, दबाया गया, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, घृणित, रौंदा हुआ, कुचला हुआ, विनष्ट, पस्त-हिम्मत, हतोत्साहित तथा वंचित आदि को प्राचीनकाल से ही दलित के रूप में समझा व जाना जाता रहा है। डॉ. श्यौराज सिंह के अनुसार, 'दलित वह है, जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।'

दलित शब्द के तहत दबाए गए, कुचले गए व्यक्तियों की जीवन कहानी उतनी ही प्राचीन है, जितनी पुरानी भारतीय हिन्दू संस्कृति है। ऋग्वैदिक काल से लेकर अद्यतन जातियों के श्रेष्ठताक्रम में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था विद्यमान है। पुराणों, वेदों तथा स्मृतियों में व्यक्त जीवन पद्धति वर्ण-व्यवस्था पर आधारित है। व्याख्याकारों के अनुसार बताया जाता है कि वैदिक काल में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था गुण, कर्म एवं स्वभाव पर आधारित होती थी, जिसमें स्पृश्य-अस्पृश्य, ऊंच-नीच, उत्तम-अधम जैसी धारणाओं की कोई जगह नहीं थी। व्यक्ति के वर्ण का निर्धारण कर्म के आधार पर होता था। कर्म के आधार पर ही व्यक्ति अपने वर्ण को बदल सकता था, लेकिन उत्तर-वैदिक काल तक आते-आते यह वर्ण-व्यवस्था जन्म पर आधारित हो कर जाति-व्यवस्था के रूप में बदल गई।

डॉ. भीमराव अंबेडकर का मानना था कि भारतीय समाज का ताना-बाना अभी जाति-व्यवस्था पर आधारित है। साथ ही भारतीय समाज के अनेक स्तरों में बदलाव का निर्धारण भी जाति के आधार पर होता है। महात्मा गांधी द्वारा दिए गए हरिजन शब्द का विरोध इस वर्ग द्वारा इस प्रकार किया गया–हरिजन शब्द में हीनता का बोध विद्यमान है, मंदिरों में देवदासियों की संतानों को भी हरिजन नाम दिया गया था, जिनकी सामाजिक पहचान अवैध संतति के रूप में थी। हरिजन शब्द में दया का भाव विद्यमान है।

वर्ष 1991 में हरिजन शब्द को प्रशासनिक, सामाजिक एवं व्यावहारिक स्तर पर प्रयोग न करने का अध्यादेश उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा बाद में तत्कालीन केन्द्र सरकार (चन्द्रशेखर सरकार) ने जारी किया। सरकार ने हरिजन शब्द के स्थान पर अनुसूचित जाति को शासकीय कार्यों के लिए उचित माना।

प्रशासनिक स्तर पर 1931 में डिप्रेस्ड क्लास के स्थान पर एक्सटीरियर क्लास (बाहरी या बहिष्कृत वर्ग) नाम दिया गया। भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अंतर्गत डिप्रेस्ट क्लास और एक्सटीरियर क्लास की जगह 'अनुसूचित जाति', 'अनुसूचित जनजाति' शब्द प्रशासनिक रूप से प्रयोग में आने लगे। सरकारी स्तर पर जातीय संरचना और सामाजिक-आर्थिक दशा को देखते हुए उत्थान हेतु जातियों की अनुसूची बनाई गई। इसी आधार पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़ा वर्ग नामक प्रशासनिक शब्द प्रयोग में आए, जिन्हें सामाजिक अस्मिता बोध की दृष्टि से दलित शब्द के तहत समायोजित करने का प्रयास किया गया।

अपने घोषणा-पत्र में 'दलित पैंथर्स' ने दलित शब्द को परिभाषित करते हुए लिखा है, 'दलित का तात्पर्य है–अनुसूचित जाति, बौद्ध, कामगार, भूमिहीन, मजदूर, गरीब किसान, खानाबदोश जातियां, आदिवासी।'

डॉ. अंबेडकर को दलित आंदोलन का प्रवर्तक और प्रेरक मानने वाले प्रसिद्ध मराठी दलित साहित्यकार डॉ. गंगाधर पानतावणे बताते हैं कि दलित कोई जाति नहीं, अपितु बदलाव और क्रांति का संकेत है। दलित मानवतावाद में विश्वास करता है, लेकिन वह ईश्वर के अस्तित्व, पुनर्जन्म, आत्मा तथा उन तथाकथित धार्मिक ग्रंथों को अस्वीकार करता है, जो भेदभाव की शिक्षा देते हैं। वह भाग्य तथा स्वर्ग की संकल्पनाओं को भी नकारता है, क्योंकि ये ही विचार उसको गुलामी का बोध कराते रहे हैं।

कंवल भारती के अनुसार, 'दलित वह है, जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है, जिसे कठोर और गंदे काम करने के लिए विवश किया गया है, जिसके शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र कारोबार करने पर रोक हो और जिस पर अछूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की हो, वही दलित है और इसके तहत वही जातियां आती हैं, जिन्हें अनुसूचित जातियां कहा जाता है।'

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

'दलित' के समानार्थी शब्दों की अर्थवत्ता की परख

कुछ समीक्षकों ने दलित शब्द की व्याख्या सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को महत्त्वपूर्ण मानकर की है। आर्थिक परिस्थिति को महत्त्वपूर्ण मानने वाले विचारकों में प्रमुख हैं–बाबुराव बागूले, नामदेव ढसाल, राव साहेब कसबे, डॉ. सदाकरहाडे, शरच्चन्द्र मुक्तिबोध, प्र. श्री नेरुरकर आदि। बाबुराव बागूले के अनुसार, दलित वह है, जो वर्ण-व्यवस्था और उसकी मानसिकता को नष्ट कर देना चाहता है। दलित इस संसार और जीवन को नए रूप में ढालना चाहता है, जिसके हाथों को इस युग ने प्रज्ञावंत प्रलयंकारी बनाने के लिए, शस्त्र एवं शास्त्र मुहैया कराए हैं।

नामदेव ढसाल का मानना है कि अनुसूचित जातियां बौद्ध, श्रमिक, भूमिहीन किसान, मजदूर, गरीब किसान, खानाबदोश जातियां, आदिवासी आदि दलित हैं। डॉ. सदाकरहाडे के अनुसार, सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित वर्ग को मिलाकर एक सर्वसमावेशक दलित वर्ग माना जाना चाहिए, जिसमें मजदूर, श्रमिक, अस्पृश्य तथा जिनका शोषण होता है, वे सभी शामिल हैं।

उपर्युक्त लेखक दलित शब्द के तहत आर्थिक और सामाजिक रूप से शोषित इस शब्द को एक व्यापक रूप प्रदान करना चाहते हैं, किन्तु इस प्रयास में वे दलित की मूल व्याख्या और उसकी अर्थवत्ता का अतिक्रमण करके अस्पृश्यता के मूलभूत सामाजिक प्रश्न से अलग-थलग पड़ जाते हैं।

दलित साहित्य आंदोलन दलित मुक्ति आंदोलन के अस्पृश्यता-विरोधी आंदोलन का साहित्यिक रूप है, इसलिए इसे केवल आर्थिक विषमता समाप्त करने वाला आंदोलन नहीं माना जा सकता। यह सामाजिक और आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए सशक्त आंदोलन है।

केशव मेश्राम के अनुसार, 'हजारों सालों से जो अन्याय एवं अत्याचारों को झेल रहे हैं, ऐसे अछूतों को ही दलित की संज्ञा दी जानी चाहिए और इन्हीं पर आधारित दलित लेखकों द्वारा निर्मित साहित्य को दलित साहित्य कहा जाना चाहिए।'

रा.भि. जोशी द्वारा लिखित मराठी लेख में उल्लेख है, दलित शब्द ज्यादा व्यापक है, लेकिन सभी दलित अस्पृश्य नहीं हैं। कुछ जातियां आर्थिक-सामाजिक दृष्टिकोण से दलित हो सकती हैं, लेकिन उन्हें अस्पृश्य नहीं कह सकते। दलितत्व से अस्पृश्यता अधिक भयंकर और अमानुष है। इस अमानुषिकता के शिकार जो कल थे, वे आज भी हैं।

डॉ. मांडे का मानना है कि ऐसे व्यक्ति, जिनका मनुष्य के रूप में जीने का अधिकार छीन लिया गया हो और जिन्हें जन्म से ही विशेष तरह का जीवन निर्वाह करने के लिए विवश किया जाता हो, मनुष्य के रूप में जिनकी प्रतिष्ठा को नकार दिया गया हो, जिन्हें सम्मानपूर्वक जीवन जीने से वंचित रखा गया हो, वे दलित हैं।

दलित चेतना आंदोलन

भारतीय इतिहास में बुद्ध प्रथम ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने वर्ण व्यवस्था को चुनौती दी और उसे अवैज्ञानिक एवं अमानवीय तक कह डाला। श्रावस्ती प्रवास के समय सुनित नामक एक हरिजन को अपने संघ में शामिल करके उन्होंने दलितों के उद्धार का वह मार्ग बताया, जो युगों-युगों तक दलित मुक्ति का रास्ता प्रशस्त करता रहा। भक्तिकाल में दलित संत-कवियों में चेतना की अलख जगाता रहा, जो आधुनिक काल तक आते-आते डॉ. अंबेडकर के विशालतम व्यक्तित्व के रूप में और ज्यादा तीव्र हुआ। डॉ. अंबेडकर का युग प्रवर्तक व्यक्तित्व और कृतित्व ही आधुनिक दलित चेतना की प्रबल प्रेरणा है। महाराष्ट्र से प्रारंभ हुए दलित साहित्य आंदोलन पर अंबेडकर के विचार और दर्शन का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

हिन्दी के वरिष्ठ दलित लेखक और कवि ओम प्रकाश वाल्मीकि के अनुसार दलित चेतना एक प्रतिसांस्कृतिक चेतना ही नहीं, अपितु एक वैकल्पिक चेतना भी है, इसलिए यह विद्रोही है। इस दलित चेतना के मूल में भारतीय सामाजिक संरचना विद्यमान है, जो न केवल जाति पर आधारित है, अपितु इसे धार्मिक रूप से वैध भी मानती है। जाति व्यवस्था सामाजिक दुराव के सिद्धांत पर आधारित है, जो हमारे सामाजिक संबंधों को ही नहीं, अपितु धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक पक्षों को भी प्रभावित करती है। यह दासता की संपूर्ण व्यवस्था है, जो हिन्दू समाज व्यवस्था में शुरू से ही धर्म प्रधान और अर्थ के रूप में गौण रही है। संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों और सुरक्षा कानूनों के बावजूद दलितों को बुनियादी सुविधाओं से वंचित रखने के लिए प्रयासरत है और इसकी सफलता के लिए हर वक्त धर्म, परंपरा, संस्कृति का जिक्र करके इसकी निरंतरता के लिए हिंसा, सत्ता और धर्म का प्रश्रय लिया जाता है।

दलित चेतना का सीधा संबंध 'मैं कौन हूं' से व्यापक रूप से जुड़ा हुआ है। चेतना का संबंध दृष्टि से होता है, जो दलितों की सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक भूमिका की छवि को धूमिल करती है। अलग-अलग कालखंडों में यह अलग रूपों में दिखाई देती है। भक्तिकाल के कवियों में यह एक अलग-अलग रूप में है, लेकिन इस चेतना के बीज वहां भी उपस्थित हैं, जो कालांतर में ज्योतिबा फुले के संघर्ष के रूप में एक संघर्षशील, बौद्धिक रूप दिखाई पड़ता है। आगे चलकर यह डॉ. अंबेडकर के जीवन-संघर्ष में एक नए जुझारू रूप में दिखाई देती है, जो दलितों में एक नई चेतना जगाती है, जिसे मुक्ति संघर्ष की चेतना कहना ज्यादा उचित होगा। यही चेतना साहित्य की प्रेरणा बनकर दलित साहित्य के रूप में प्रकट होती है, जिसमें मुक्ति-आजादी के गंभीर सरोकार निहित हैं।

NEERAJ PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

दलित पैंथर आंदोलन और दलित साहित्य अंत:संबंध

दलित पैंथर आंदोलन दलित मुक्ति संघर्ष का एक संघर्षपूर्ण संगठन है, जिसकी मुख्य भूमिका सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में परिलक्षित होती है। इससे अनेक दलित लेखक भी जुड़े हुए हैं, इसका उद्‌भव अत्यंत विषमतापूर्ण सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दशाओं में हुआ। गांवों में जमींदार किसानों व शासन व्यवस्था ने दलितों पर अत्याचार जारी रखे। दलित कभी अस्पृश्य होने के कारण, तो कभी भूमिहीन किसान होने के कारण अनेक अत्याचारों के शिकार होते रहे हैं। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के कारण शहरों में बेरोजगार युवा वर्ग को साधनहीनता के कारण हीन भावना ने जकड़ लिया था। दिशाहीन युवा वर्ग मार्ग से भटक रहा था। दलित युवा वर्ग यह महसूस करने लगा था कि इस बढ़ते हुए अत्याचार के विरुद्ध सिर्फ कविता, लेख, कहानियां लिखने से कुछ नहीं होगा। उन्हें साहित्यिक आंदोलन के साथ-साथ सामाजिक आंदोलन की जरूरत दिखाई देने लगी थी। इसी समय कॉलेज के छात्रावासों में रहने वाले दलित और गैर-दलित युवकों के सामूहिक प्रयासों से 'युवक आघाड़ी' की स्थापना हुई, जिसमें प्रमुख दलित युवा रचनाकार भी सम्मिलित थे। इसी दौरान कुछ दलित युवा रचनाकार अमरीका के अश्वेत साहित्य और क्रांतिकारी (मुक्ति) आंदोलन से परिचित हो गए थे, जिसे अमरीका में ब्लैक पैंथर के नाम से जाना जाता था। इसी आंदोलन से प्रेरणा लेकर इन युवाओं ने 9 जुलाई, 1972 को 'दलित पैंथर' का गठन किया। दलित पैंथर ने दलितों पर हो रहे अन्याय के खिलाफ उस वर्ष के स्वतंत्रता दिवस को काले दिवस के रूप में मनाया और काले झण्डों के साथ दलित पैंथर के नेतृत्व में कार्यकर्त्ताओं ने शहरों में पदयात्राएं कीं।

दलित पैंथर और दलित साहित्य का संबंध अधिक गहरा है। दलित साहित्य आंदोलन को तीव्र गति प्रदान करने और नई दिशाओं का बोध कराने में कुछ पत्रिकाओं बहुत ज्यादा योगदान रहा है। इन पत्रिकाओं के साथ-साथ दलित साहित्य सम्मेलन आयोजित किए गए। इन सम्मेलनों में दलित लेखकों, कवियों ने पर्याप्त संख्या में शामिल होकर साहित्य संबंधी चर्चाएं कीं और दलित साहित्य के तहत धधक रही अनेक अनिष्ट प्रवृत्तियों को रोककर दलित साहित्य की संभावनाओं को बढ़ाने का प्रयास किया।

भारत में आजादी के आंदोलन को तीव्र करने में जिस प्रकार से विभिन्न भाषाओं में निकलने वाली पत्रिकाओं ने योदगान दिया था और जनता में चेतना जगाने की अपार शक्ति का प्रमाण दिया था, उसी प्रकार का कार्य डॉ. अंबेडकर ने 'मूक नायक', 'बहिष्कृत भारत', 'जनता' आदि समाचार पत्रों के माध्यम से दलित वर्ग की समस्याओं का समाधान करने के लिए भगीरथ प्रयत्न किया।

दलित साहित्य का स्वरूप

वैसे तो साहित्य में दलित वर्ग का उदय बौद्ध काल से माना जाता रहा है, लेकिन एक लक्षित मानवाधिकार आंदोलन के रूप में दलित साहित्य 20वीं शताब्दी की देन माना जाता है। हिन्दी साहित्य के पुरोधा माने जाने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नामक पुस्तक में साहित्य के सरोकारों को दर्शाने की कोशिश की है। परन्तु दलित चिंतक ओम प्रकाश बाल्मीकि जब यह कहते हैं कि हिन्दी साहित्य में ढूंढने पर भी हमें अपना चेहरा कहीं दिखाई नहीं देता, तब निश्चित तौर पर कचोटने वाला यह प्रश्न स्थापित साहित्य और समाज को कटघरे में खड़ा करने वाला है।

दलितों की परेशानी, दासता, दु:ख, गरीबी और उपेक्षापूर्ण जीवन का वास्तविक चित्रण करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है। कष्ट और आह का उदात्त स्वरूप है दलित साहित्य।

अंबेडकर के विचारों से दलितों को अपनी दासता महसूस हुई। उनकी वेदना को स्वर मिला, क्योंकि मूक समाज को अंबेडकर के रूप में अपना नायक मिल गया। दलितों की यह वेदना ही दलित साहित्य की जन्मदायिनी है।

विमल थोरात के अनुसार दलित साहित्य में विद्रोह और नकार दलितों की वेदना से ही उत्पन्न हुए हैं। ये विद्रोह और नकार अपने ऊपर हिन्दू धर्म द्वारा थोपी गई अमानवीय व्यवस्था के खिलाफ है। जिस प्रकार दलित साहित्य में वेदना सामूहिक रूप से व्यक्त होती है, वैसे ही नकार और विद्रोह भी सामाजिक एवं सामूहिक है। जिस विषम व्यवस्था ने दलितों का शोषण किया, उसी व्यवस्था के प्रति यह विद्रोह और नकार है। इनका स्वर विषम व्यवस्था को नकारते हुए समता और आजादी, न्याय और बंधुत्व की मांग करता है–'मैं मनुष्य हूं, मुझे मनुष्य के सभी अधिकार प्राप्त होने चाहिए' इस बोध से यह विद्रोह उत्पन्न हुआ है।

मराठी लेखक नारायण सुर्वे के अनुसार, दलित साहित्य की अपनी अलग पहचान है। वह पूरी तरह से समाजाभिमुख है। सामाजिक समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व का भाव एवं वर्ण-व्यवस्था का विरोधी स्वर ही उसकी जड़ है तथा उसका प्रमुख लक्ष्य सामाजिक बदलाव है।

वर्तमान में दलित साहित्य अखिल भारतीय स्वरूप धारण कर चुका है। लगभग साहित्य की समस्त विधाओं में दलित साहित्य की अभिव्यक्ति मुखरित हुई है। अस्मिता और आत्मसम्मान के लिए हीनता के भाव को छोड़कर अनेक भाषाओं में दलित आत्मकथाएं अपने वेदनामय जीवन के अनुभवों के आधार पर प्रकट हुई हैं। मराठी में दया पवार की 'अछूत', शरण कुमार लिंबाले की 'अक्करमाशा', मोहनदास नैमिशराय की 'अपने-अपने पिंजरे', ओम प्रकाश बाल्मीकि की 'जूठन', बेबी कांबले की 'जीवन हमारा', सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत' एवं कौसल्या बैसत्री की 'दोहरा अभिशाप' आदि आत्मकथाओं ने हिन्दी क्षेत्र में स्थापित परंपरागत हिन्दी साहित्य के सामने नई चुनौती प्रस्तुत की है। ये आत्मकथाएं हीनता बोध से दलित को बाहर ला रही हैं।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com